ISSN : 2583-2948

साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल में सामाजिक बोध

डॉ. नवीन कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर
पंडित चिरंजी लाल शर्मा राजकीय महाविद्यालय
करनाल हरियाणा
मो ० – 9416218330

साहित्य समाज के हर्ष–विषाद, सुख–दुख, आशा–निराशा आदि से अपने स्वरूप की रचना करता है। अतः साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। समाज की गतिशीलता के साथ साहित्य अपना कथ्य सीधे समाज से ही ग्रहण करता है। साहित्य का उद्देश्य व्यक्ति और समाज का कल्याण करना है। यह व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच रागात्मक संबंध स्थापित करता है। साहित्य की इस विशिष्टता में हिन्दी ग़ज़ल ने भी अपना विशिष्टतम योगदान दिया है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल के कथ्य को प्रेम और वैयक्तिक पीड़ा से ऊपर उठाकर समाज के व्यापक धरातल पर स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को समाज और जनजीवन से जोड़कर अनूठे मुकाम तक पहुँचाया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक मूल्यों में जिस तेजी से बदलाव आया, वैसा पहले नहीं आया था। परस्पर प्रेम, अपनापन और सहानुभूति के भाव का निरंतर पतन तथा नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बढ़ते संघर्ष को पहले अनुभव नहीं किया गया था। राजनीति में बढ़ते भ्रष्टाचार को अब स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। समाज की दयनीय स्थिति और हिन्दी ग़ज़लकारों की भूमिका के संबंध में डॉ0 प्रतिमा सक्सेना लिखती है। ''मोहभंग से लेकर आज की बिगड़ती हुई स्थितियों तक पूँजीवादी तबका खूब पनप रहा है। बड़े घरानों के अतिरिक्त नव–धनाढ़यों का एक बहुत बड़ा वर्ग रक्तबीज की भाँति बढ़ रहा है। समाज में सामन्तवर्ग पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया है। वह पंचों, सरपंचों, भूमिपतियों, छोटे–बड़े नेताओं और दलालों के रूप में आज भी विद्यमान है। इसलिए शोषण कम नहीं हुआ है, बल्कि बढ़ा ही है। ॰ ॰ ॰ ॰ आम आदमी की दयनीय स्थितियों और त्रासदियों के लिए उत्तरदायी ताकतों के उद्देश्य को बेनकाब करना, जनता में आत्मविश्वास तथा एक व्यापक आंदोलन की सक्रिय भूमि तैयार करने में सहयोग देना, आज के साहित्यकार के लिए बुनियादी सरोकार बन गए हैं। हिन्दी के साहित्यकार बखूबी अपने इस दायित्व का निर्वाह भी कर रहे हैं। हिन्दी के ग़ज़लकारों ने आज के सामाजिक यथार्थ को गहराई के साथ पहचाना है।''[1]

वास्तव में हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपने समय के यथार्थ से आँख नहीं चुरायी। वे उसकी कड़ुवाहट से भली–भांति परिचित हैं। अतः सामाजिक जीवन के कटु यथार्थ, विसंगतियों एवं विद्रूपतयों को उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाया और उन पर कठोर प्रहार किए। यही कारण है कि

हिन्दी ग़ज़ल में सभी सामाजिक समस्याओं और युगीन परिवेश का सीधा और स्पष्ट चित्रण देखने को मिलता है।

मानवीय मूल्य – वर्तमान समाज में मानवीय मूल्यों का महत्त्व लगभग समाप्तप्राय हो गया है। बढ़ती हुई बौद्धिकता और स्वार्थ ने समाज को खोखला करके रख दिया है। व्यक्तिवादिता और भौतिकता की लपलपाती आग पग–पग पर मानवता को लील रही है और लोग संवेदनाशून्य खड़े देख रहे हैं–

हर इक सड़क पै हो रहा इंसानियत का कत्ल।

पूरे शहर में फिर भी कोई सनसनी नहीं।।[2]

आज मनुष्य मानवीय मूल्यों को भूल गया है। उसकी इंसानियत समाप्त हो गयी है और उस पर शैतानियत सवार हो गयी है। उसने वहशी दरिंदे का रूप धारण करके दुनिया को इन्सानियत के कत्ल का मैदान बना दिया है। मनुष्य मनुष्य के खून का प्यासा हो रहा है–

आज दुनिया बन गई, इन्सानियत की कत्लगाह

शैतानियत का नाच होता, आज के इस दौर में।

र र र र र र र र र र र र र र र र र र र

आदमी इन्सां नहीं है, अब दरिन्दा बन गया

नोचता आपस में बोटी, आज के इस दौर में।।[3]

महानगरीय सभ्यता – स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् देश की औद्योगिक प्रगति के परिणामस्वरूप महानगरों का विकास हुआ। महानगरों के भौतिक विकास के साथ–साथ अनेक विसंगतियाँ और विद्रूपताएँ भी भारतीय समाज में शामिल हो गई। समाज की इन त्रासद स्थितियों का यथार्थ चित्रण हिन्दी ग़ज़लकारों ने मार्मिकता के साथ किया है। महानगरीय विसंगतियों की ओर संकेत करती निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

जलता जंगल महानगर

सूखा दल–दल महानगर

खुलती बोतल महानगर

बिकता आँचल महानगर

र र र र र र र र र

गँवई! तू आ गया कहाँ

तेरा वध–स्थल महानगर।[4]

वास्तव में आज के महानगरीय जीवन ने हमारे जीवन के समस्त सुखों को हमसे छीन लिया है जिससे परिवार टूट रहे हैं और परस्पर प्रेम तथा सद्भाव समाप्त हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति दोहरी जिन्दगी जी रहा है। महानगरीय सभ्यता के फलस्वरूप मनुष्य संबंधहीन हो गया है। दूसरों के सुख या दुःख के प्रति उदासीन होकर वह संवेदनहीन हो गया है। शहर ने मनुष्य को अत्यंत आत्मकेन्द्रित बना दिया है–

इस शहर में वो कोई बारात हो या वारदात

अब किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियाँ।[5]

महानगरों में बनावटीपन और संबंधों में दरार तथा अजनबीपन सामान्य बात हो गई हैं। रिश्तों की मिठास समाप्त हो गयी हैं और प्रत्येक मनुष्य एक–दूसरे से अनजानों जैसा व्यवहार करने लगा है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति उलझनों से घिरा और आत्मकेन्द्रित है–

अपना है और अपनों से अनजान है शहर,

सच पूछिए तो चेहरों की पहचान है शहर।

रिश्तों के आईने जहाँ टूटे हैं बार–बार

स्वार्थों की एक बेरहम चट्टान है शहर।।[6]

महानगरीय जीवन के कारण बेईमानी, झूठ और फरेब आज समाज में नैतिकता के मापदण्ड बन गये हैं। सच बोलना पाप और अपराध समझा जाने लगा है। सर्वत्र बेईमानी, झूठ और फरेब का ही बोलबाला है। आज जो भी मनुष्य ईमानदारी और सच्चाई पर चलता है। उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सच्चाई, ईमानदारी और विश्वास बीते जमाने की बात बनकर रह गए हैं। निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए ईमान छोड़ देना आज के मनुष्य की आदत बन चुकी है–

ईमान बदल देते हैं तारीख की तरह

इक झूठ का इतिहास हैं मेरी गली के लोग।[7]

आज सारा संसार ही छल और फरेब का पिटारा बन चुका है। आज मनुष्य एक चेहरे पर कई चेहरे लगाकर घूम रहा है। धोखेबाजी उसके जीवन का अनिवार्य अंग बन चुकी है। वह ऊपरी तौर पर

सच्चाई का ढोंग करता है और भीतर से छल–फरेब रखता है। इसी कटु सत्य को बेदिल हाथरसी ने बड़ी बखूबी से व्यक्त किया है–

ये दुनिया वास्तव में छल–फरेबों का पिटारा है।

किसी ने हँस के लूटा है, किसी ने छुप के मारा है।

जिसे भी देखिए, चेहरा लगाकर बात करता है।

बनावट ही बनावट है, किसे समझूँ हमारा है।।[8]

भ्रष्टाचार – आधुनिक युग में सर्वत्र भ्रष्टाचार फैला हुआ है। भ्रष्टाचार समाज का नासूर बन गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह भ्रष्टाचार शिष्टाचार बनकर समा गया है। सामान्य कर्मचारी से लेकर बड़े अधिकारी तक, छुटभैया नेता से मंत्री महोदय तक सभी भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। समाज का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जो भ्रष्टाचार से ग्रसित न हो। देश के सामान्य जन के लिए जो कल्याणकारी योजनाएँ बनाई जाती हैं, वे उन तक नहीं पहुँच पाती। शासकीय कार्यालयों में भ्रष्टाचार की अधिकता के कारण सामान्य व्यक्ति तक योजनाओं का लाभ नहीं पहुँच पाता। हिन्दी ग़ज़लकारों ने समाज की इस बुराई पर भी प्रहार किया है–

यहाँ तक आते–आते सूख जाती हैं कई नदियाँ

मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।[9]

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार सभी को प्रभावित कर रहा है। यह तो एक ऐसा दलदल है जिसमें सभी के पाँव धँसे हुए हैं। ऐसी भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए दुष्यन्त कुमार लिखते हैं–

इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछा है।

हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।[10]

हिन्दी ग़ज़लकार पग–पग पर फैले भ्रष्टाचार को देखकर अत्यंत व्यथित है। उसे कहीं भी शिष्टाचार की रोशनी दिखाई नहीं देती। उसे प्रत्येक व्यक्ति भ्रष्टाचारी और लुटेरा दिखाई देता है। अतः उसकी व्यथा इन शब्दों में व्यक्त हुई है–

कदम कदम पे अंधेरा है क्या किया जाए,

नज़र से दूर सवेरा है क्या किया जाए,

जहाँ पे ठहरे हैं उस गाँव का ये आलम है,

हरेक शख्स लुटेरा है क्या किया जाए।[11]

अलगाववाद और आतंकवाद – भ्रष्टाचार के साथ–साथ अलगाववाद और आतंकवाद की प्रवृत्ति वर्तमान समाज के लिए एक कोढ़ बन चुकी है। यह देश के विकास तथा देश की एकता और अखंडता के लिए मुख्य बाधा बनी हुई है। समाज में निरंतर बढ़ती आतंकवादी घटनाओं ने समाज को हिलाकर रख दिया है। कोई भी व्यक्ति इन आतंकी हमलों का कहीं भी और कभी भी शिकार हो सकता है–

है दिन भी अंगारों के हर रात अंगारों की

यह किसने हमें दी है सौगात अंगारों की

मुश्किल है बहुत मुश्किल है, अब घर से निकल पाना

कागज की छतरियाँ हैं, बरसात अंगारों की।।[12]

आतंकवादी घटनाओं के कारण चारों ओर नफरत और घृणा का वातावरण फैल गया है। चारों तरफ सन्नाटा पसरा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सारा शहर एक लाश की तरह निश्चेष्ट पड़ा है–

आतंक इस कदर कि कोई बोलता नहीं

खामोश खड़े पेड़, पात डोलता नहीं।

सन्नाटा, हवा बंद, शहर लाश हो गया

सहमा हुआ परिन्दा भी पर खोलता नहीं।[13]

आतंकवादियों द्वारा निरपराध लोगों को मौत के घाट उतारने के कारण मनुष्य हर समय डर के साये में जीने लगा है। हर मनुष्य इस बात से डरने लगा है कि किसी भी समय कहीं भी आतंकवादी घटना घट सकती है। मनुष्य की ऐसी दयनीय स्थिति का भी चित्रण हिन्दी ग़ज़ल में हुआ है–

हर चेहरे पे चीख थमी है दहशत का सन्नाटा है,

हर सीने में चुभा हुआ–सा कोई खंजर लगता है।[14]

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव – वर्तमान युग में हमारी भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। इस नयी सभ्यता के कारण मनुष्य ने अपने आपको सजाना–सँवारना शुरू किया। बड़ी–बड़ी इमारतें तो खड़ी की लेकिन स्वयं अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति से कट गया। अपने जीवन मूल्यों से गिर गया–

आदमी दिन–ब–दिन गिरा नीचे

और ऊपर उठे मकान यहाँ।[15]

नयी सभ्यता के लोग दूसरों की बरबादी देखकर खुश होते हैं। इस नयी सभ्यता ने लोगों को इस तरह बहका दिया है कि वे रागात्मक संबंधों पर भी हँसते हैं। इस नयी सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए जहीर कुरैशी लिखते हैं–

लोग झरते फूल पातों पर हँसे,

लोग रो लेने की बातों पर हँसे,

सभ्यता ने इस कदर बहका दिया,

लोग रिश्ते और नातों पर हँसे।[16]

इस नयी सभ्यता का प्रभाव केवल मनुष्य की प्रवृत्तियों पर ही नहीं हुआ है बल्कि उसकी केशभूषा एवं वेशभूषा पर भी हुआ है। आज हमारे समाज की स्थिति यह है कि लोग अपनी कमाई का अधिकांश भाग फैशन पर ही खर्च करते हैं। महानगर से लेकर छोटे–छोटे गाँवों तक गली–मुहल्ले में जगह–जगह पर 'ब्यूटी पार्लर' दिखाई देते हैं। लोग आज बनावटीपन में जी रहे हैं। वे केवल बाहरी सुन्दरता की चकाचौंध में डूबे हुए हैं। उनकी स्थिति कुछ इस प्रकार दिखाई देती है–

चेहरे तो मायूस, मुखौटों पर मुस्काने दुनियाँ की

शो–केसों में सजी हुई खाली दुकानें दुनियाँ की।[17]

आम आदमी की पीड़ा का चित्रण – साठोत्तरी हिन्दी गज़ल में नयी सभ्यता के चंगुल में फंसे आम आदमी के जीवन से जुड़े अनेक सामाजिक बिम्ब–प्रतिबिम्ब भी हिन्दी गज़ल में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। आज के दौर में आम आदमी अनेक यातनाओं से गुज़र रहा है। अतः आम आदमी की तकलीफ और पीड़ा को हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। दुष्यंत कुमार अपनी ग़ज़ल में आम आदमी की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

मुझमें रहते हैं करोड़ो लोग चुप कैसे रहूँ,

हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।[18]

दुष्यंत कुमार ने आम आदमी की विवशता को बड़ी मार्मिकता से अपनी ग़ज़लों में व्यक्त किया है। आज के युग में आम आदमी की सहनशीलता उसकी विवशता बनकर रह गई है। हिन्दी ग़ज़लकार आम आदमी की इस विवशता पर व्यंग्य करते हुए लिखता है–

न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,

ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए।[19]

आज का आम आदमी निरंतर अभावों में जी रहा है। वह हर समय अत्यंत आकुल–व्याकुल रहता है। अभाव में जीवन व्यतीत करने वाले आम आदमी के 'दर्द' को हिन्दी ग़ज़ल में बड़ी खूबी के साथ व्यक्त किया गया है–

सिर से सीने में कभी, पेट से पाँवों में कभी,

एक जगह हो तो कहें दर्द इधर होता है।[20]

समाज की स्थितियाँ आम आदमी को यह सोचने पर विवश कर देती हैं कि वह किस आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था में जी रहा है। उसे इस वातावरण से घुटन–सी महसूस होने लगती है। उसे लगता है मानों वह किसी यातनागृह में जिन्दगी का भार ढो रहा है किन्तु इस आम आदमी की पीड़ा को समझने की कोई कोशिश नहीं करता। उसकी समस्याओं को हल करने का नारा तो हर कोई बुलंद करता है लेकिन उनकी समस्याओं का हल करने वाला कोई नहीं है। अतः आम आदमी मजबूर होकर कहता है–

मैं आम आदमी हूँ–तुम्हारा ही आदमी

तुम काश देख पाते मेरे दिल को चीर के।[21]

आम आदमी की समस्याओं और विवशताओं के साथ–साथ हिन्दी ग़ज़ल में आम आदमी का हौंसला भी बढ़ाया गया है। उसे जीवन–संग्राम का मुकाबला करने की ओर प्रेरित किया गया है। आज आदमी को निडर होकर समस्त समस्याओं का सामना करना ही होगा। निरंतर अभावों और समस्याओं से जूझते हुए टूट जाना श्रेयस्कर नहीं है अपितु जीवन में आने वाले तूफान का मुकाबला करने का हौंसला लाना ही होगा–

चिंगारियों से मांग तू अपनी सजा के देख,

ज्वालामुखी से प्यार का रिश्ता निभा के देख,

मौसम के आईने का बदल जाएगा मिज़ाज,

बस, एक बार रोते हुए मुस्करा के देख।।[22]

निःसंदेह कहा जा सकता है कि हिन्दी ग़ज़ल सामाजिक परिवेश में साँस लेती है। यही सामाजिक परिवेश हिन्दी ग़ज़ल का निरालापन है। हिन्दी के अधिकांश ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में बड़ी व्यापकता और गहनता के साथ सामाजिकता का चित्रण किया है। हिन्दी ग़ज़लकारों द्वारा वर्णित

सामाजिक पीड़ा वैयक्तिक न होकर पूरे समाज को प्रतिबिम्बित करने वाली है। यही युगीन चेतना हिन्दी ग़ज़ल की विशिष्टता है।

सन्दर्भ सूची

1. आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल और आधुनिकता बोध, प्रतिमा सक्सेना, पृष्ठ–158
2. शामियाने काँच के, कुँवर बेचैन, पृष्ठ–86
3. टुकड़े–टुकड़े ज़िंदगी, देवदास बिस्मिल, पृष्ठ–23
4. धार के विपरीत, चंद्रसेन विराट, पृष्ठ–101–102
5. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, पृष्ठ–21
6. एक टुकड़ा धूप, जहीर कुरेशी, पृष्ठ–16
7. रस्सियाँ पानी की, कुँवर बेचैन, पृष्ठ–27
8. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें, सं. गिरिराजशरण अग्रवाल, पृष्ठ–118
9. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, पृष्ठ–15
10. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, पृष्ठ–27
11. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें, सं. गिरिराजशरण अग्रवाल, पृष्ठ–35
12. रस्सियाँ पानी की, कुँवर बेचैन, पृष्ठ–18
13. धार के विपरीत, चंद्रसेन विराट, पृष्ठ–109
14. धूप दिखाए आरसी, रविन्द्र भ्रमर, पृष्ठ–51
15. भवानीशंकर की हिन्दी ग़ज़लें, भवानीशंकर, पृष्ठ–37
16. चाँदनी का दु:ख, जहीर कुरेशी, पृष्ठ–71
17. नीम की पत्तियाँ, रामकुमार कृषक, पृष्ठ–9
18. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, पृष्ठ–57
19. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, पृष्ठ–13
20. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, पृष्ठ–47
21. चाँदनी का दु:ख, जहीर कुरेशी, पृष्ठ–75
22. धूप के हस्ताक्षर, ज्ञान प्रकाश विवेक, पृष्ठ–74

————————